Original Article
ISSN (Online): 2582-7472

ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts
March 2024 5(3), 580–585

RESEARCH STUDY OF SAINT POETRY TRADITION IN NIRGUN BHAKTI STREAM

निर्गुण भक्ति धारा में संत काव्य परम्परा का शोधपरक अध्ययन

Kamlesh Kumar [1], Dr. Shrikant Mishra [2]

[1] Research Scholar, Hindi, Malvanchal University, M.P., India
[2] Hindi Department, S.S. College Shahjahanpur, India

DOI
10.29121/shodhkosh.v5.i3.2024.2526

Funding: This research received no specific grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sectors.

Copyright: © 2024 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License.

With the license CC-BY, authors retain the copyright, allowing anyone to download, reuse, re-print, modify, distribute, and/or copy their contribution. The work must be properly attributed to its author.

OPEN ACCESS

ABSTRACT

English: The scholars divided Bhakti literature into four streams- Gyanashrayi, Premashrayi, Ramashrayi and Krishnaashrayi. In this literature, Gyanashrayi stream is also recognized as Sant Kavya stream. Sant Kavya tradition was started by Kabir. Names of many saints are taken in this tradition. Its tradition is an example of the oldest tradition of Bhakti poetry. After taking Guru Diksha from Raghavanand, Ramanand started Ramavat Sampradaya. It is said that due to proximity with Shri Sampradaya, the difference between the two almost ended. Their basic mantra is 'Ram' or 'Sita Ram' and the deity is 'Shri Ram'. Their Ram, despite being formless and without attributes, takes incarnation for the welfare of the devotees. His twelve disciples are also called 'Mahabhagvat'. Among his disciples, there were Nirgunavadi saints like Saint Kabirdas, Raidas, Sennai, on the other hand, there were also Vaishnav Brahmin Sagunopasak Acharya devotees like Swami Anantanand, Bhavanand, Sursuranand, Narharyanand, who were full supporters of incarnation and worshiped idols.

Hindi: भक्ति साहित्य को अध्येदाताओं ने चार धाराओं में विभाजित किया-ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, रामाश्रयी तथा कृष्णाश्रयी। इस साहित्य में ज्ञानाश्रयी धारा को संत काव्य धारा के रूप में भी पहचान प्राप्त हुई। संत काव्य परंपरा का प्रवर्तन कबीर ने किया। इस परम्परा में अनेक संतों के नाम लिये जाते हैं। इसकी परम्परा भक्ति काव्य की प्राचीनतम परम्परा का उदाहरण है। राघवानन्द से गुरू दीक्षा लेने के बाद रामानन्द ने रामावत सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया। कहा जाता है कि श्री सम्प्रदाय के साथ सानिध्य होने के कारण दोनों में भेद समाप्त जैसा हो गया। इनका मूल मंत्र ‘राम’ या ‘सीताराम’ है और इष्ट ‘श्रीराम’ हैं। इनके राम निर्गुण निराकार होते हुए भी भक्तों के कल्याण के लिए अवतार लेते हैं। इनके बारह शिष्यों को ‘महाभागवत्’ भी कहा जाता है। इनके शिष्यों में उस सन्त कबीरदास, रैदास, सेननाई जैसे निर्गुणवादी संत थे तो दूसरी ओर अवतारवाद के पूर्ण समर्थक, मूर्तिपूजा करने वाले स्वामी अनन्तानन्द, भावानन्द, सुरसुरानन्द, नरहर्यानन्द जैसे वैष्णव ब्राह्मण सगुणोपासक आचार्य भक्त भी थे।

Keywords: Nirguna Bhakti, Saint Poetry Tradition, Bhakti Literature, Shaivism, Sect, निर्गुण भक्ति, संत काव्य परम्परा, भक्ति साहित्य, शैवदर्शन, सम्प्रदाय

1. प्रस्तावना

संत काव्यधारा की उत्पत्ति पर विचार करते हुए डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं- ‘‘संत शब्द पर मतभेद की गुंजाइश है। कबीर तथा उनके अनुसरणकर्ताओं को ही संत क्यों कहा जाय? रामविलास शर्मा तुलसीदास के ‘सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा’ को पूरी तरह मानते हैं। इसलिए सगुणमार्गी भी संत हैं और निर्गुणमार्गी भी। वे इस बात को भी नहीं स्वीकार करते कि निर्गुण ईश्वर की उपासना अधिक प्रगतिशील है और सगुण ईश्वर की उपासना कम प्रगतिशील। सभी संतों की प्रगतिशीलता का वजन बराबर है। वर्णाश्रम धर्म के समर्थक तुलसी उतने ही प्रगतिशील हैं जितने वर्णाश्रम धर्म-भंजक कबीर। 14वीं शताब्दी ईस्वी में महाराष्ट्र के वारकरी सम्प्रदाय के भक्तों के लिए संत शब्द का प्रयोग किया जाता था। बाद में वारकरी सम्प्रदाय के अनुयायियों को भी संत कहा जाने लगा। वारकरी सम्प्रदाय की उपासना बहुत कुछ निर्गुणोपासना-सी ही थी। कबीरदास ने बार-बार ‘संतों’ को संबोधित किया है। लगता है, उनका समाज संत समाज कहा जाता रहा होगा। अन्यथा संतों को बार-बार संबोधित करने का कोई तुक नहीं था। तुलसीदास ने भी ‘संत’ शब्द का प्रयोग किया है। पर तुलसी और कबीर के अर्थों में गुणात्मक अंतर है। तुलसी संतत्व को विशेष प्रकार का स्वभाव मानते हैं- ‘कबहुक संत सुभाउ गहोंगे’, पर कबीर आस्था और विश्वास की प्रणाली। तुलसीदास कबीर को संत मानने को तैयार नहीं थे-झूठो है झूठो है झूठो सदा, जग संत

कहंत जे अंत लहा है। जानपने को गुमान बड़ो, तुलसी के विचार गँवार महा है।। 'जानपने को गुमान' का संकेत कबीर की ही ओर है। लोक में भी सामान्यतः संतदास उन्हीं को कहा जाता है जो निम्न वर्ग के साधु हैं। अतः कबीर आदि को संत कहना अधिक संगत प्रतीत होता है।''

वहीं संत काव्य परिचय देते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं- ''सन्त-काव्यधारा के दार्शनिक-सांस्कृतिक आधार अनेक हैं, जिनमें से प्रमुख रूपेण उल्लेखनीय हैं- उपनिषद्, शंकराचार्य का अद्वैत-दर्शन, नाथ-पन्थ, इस्लाम धर्म तथा सूफी-दर्शन। सन्तों के चिन्तन, जीवन-दर्शन और काव्यधारा पर उपनिषदों का व्यापक प्रभाव है। उपनिषदों में प्रतिपादित ब्रह्म, जीव, जगत् और माया सम्बन्धी विचारधारा के साथ ही ब्रह्म के स्वरूप-वर्णन से सम्बद्ध उपमानों और अप्रस्तुत योजनाओं को सन्त कवियों द्वारा प्रायः उसी रूप में ग्रहण कर लिया गया है। उपनिषदों के अनन्तर सन्त-काव्यधारा और सन्त-दर्शन का मुख्य आधार है- शंकर का अद्वैत- दर्शन। सन्तों की विवर्त-भावना, प्रतिबिम्ब-भावना, प्रणव-भावना, साधना-पक्ष और भक्ति-पद्धति पर आचार्य शंकर की विचारधारा का व्यापक प्रभाव है। आचार्य शंकर और निर्गुण सन्त कवि, दोनों इस विषय में एकमत हैं कि जीव विशुद्ध ब्रह्मतत्त्व है और जो भिन्नता की उपलब्धि होती है, वह माया अथवा अविद्या जनित उपाधि है। सन्तों ने आत्मा की सर्वरूपता, सर्वात्म-भावना एवं सर्वशक्तिमत्ता प्रतिपादित की है। ये भावनाएं भी शांकर सिद्धान्त के अनुकूल हैं। सन्त-परम्परा में आत्मा की अखण्डता, एकरसता, अद्वैतरूपता एवं अकथनीयता का प्रतिपादन भी शंकर-सिद्धान्त के अनुरूप है। सन्त-काव्य और सन्त-दर्शन पर नाथ-पंथ का भी प्रचुर प्रभाव है। नाथपन्थी कवियों एवं विचारकों के शून्यवाद, उनके द्वारा गुरु की प्रतिष्ठा और सृष्टि-क्रमय आत्मा, जीव आदि के विषय में उनकी मान्यताओं से सन्त कवि अनेकशः प्रभावित रहे हैं। सन्त-साधना में योग-प्रक्रिया की जो प्रधानता है, उसका मूल स्रोत नाथ-पन्थी साधना-पद्धति ही है। तन्त्र-साधना का भी सन्त-मत पर प्रभाव रहा है। यद्यपि कबीरदास ने स्पष्टतया कहा है- ''तन्त्र न जानूं, मन्त्र न जानूं, जानूं सुन्दर काया'', तथापि कबीर के अनन्तर उनकी परम्परा में अवतरित और विकसित सम्प्रदायों में तन्त्र-साधना का स्वरूप प्रमुख रहा। मलूक-पन्थ और निरंजनी सम्प्रदाय में इस प्रभाव को सहज ही लक्षित किया जा सकता है। इस्लाम के सम्पर्क और प्रभाव के कारण सन्तों की विचारधारा एकेश्वरवाद से प्रभावित हुई। इस्लाम की देन निषेधात्मक अधिक रही, विधेयात्मक कम। मूर्तिपूजा तथा अवतारवाद के बहिष्कार का मूलाधार इस्लाम धर्म में ही है। इस्लाम ने सामाजिक असमानता को दूर करने की भी चेष्टा की। सत्य यह है कि एकेश्वरवाद उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। अतः कबीर प्रभृति सन्त कवियों ने हिन्दू-मुसलमान दोनों को एकेश्वरवाद का सन्देश सुनाया, जिसके परिणामस्वरूप जनता को बहुदेवोपासना के अभिशाप से छुटकारा मिला। इस सन्दर्भ में दार्शनिक-सांस्कृतिक धरातल पर सूफी मत से प्राप्त प्रेरणा भी उल्लेखनीय है। सन्त-काव्य में दाम्पत्य प्रतीकों की उपलब्धि सूफी-दर्शन के प्रभाव का ही परिणाम है। सूफी मत ने सन्तों की विचारधारा को ही नहीं, अभिव्यंजना-शैली को भी प्रभावित किया। इस सम्प्रदाय के साधनात्मक एवं भावनात्मक आदर्श सन्त कवियों को निरन्तर प्रभावित करते रहे। सूफी मत ने देशव्यापी धार्मिक कटुता को समाप्त करके प्रेम, सहिष्णुता, औदार्य एवं मधुरता की भावना का प्रसार किया। यह कार्य ज्ञानमार्गी सन्तों के साहचर्य-सहयोग से ही सम्भवहुआ। उस युग में ज्ञानमार्गी सन्त कवियों ने धार्मिक-सांस्कृतिक क्षेत्र की रूढ़ियों की उपेक्षा एवं आलोचना की है। उन्होंने निगम, आगम, पुराण आदि को महत्त्वहीन प्रमाणित किया। किन्तु बौद्धों का दुःखवाद एवं शून्यवाद, वज्रयानियों की तान्त्रिक साधना, सिद्धों की गूढ़ोक्तियों के रूप में उलटबांसियां, नाथ-सम्प्रदाय की योग-साधना तथा काव्य-साधना किसी-न-किसी रूप में सन्त- काव्य में समाहित हुई। सन्त कवियों ने वैदिक साहित्य, वैदिक परम्पराओं एवं बाह्याचारों की जो आलोचना आद्योपान्त की है, वह सब बौद्ध धर्म का ही प्रभाव है। यह भी उल्लेखनीय है कि मध्ययुग मे निर्गुण भक्ति के मुख्य संस्थापक स्वामी रामानन्द ने साधना एवं भक्ति के द्वार शूद्रों तथा निम्न वर्गों के लिए भी खोल दिये। भुक्ति में प्रेमतत्त्व का समावेश कर उन्होंने उसे और भी सुसाध्य एवं स्पृहणीय स्वरूप प्रदान किया।''

इस काव्यधारा के प्रमुख संत कवियों का संक्षिप्त वर्णन निम्नवत् है-

रामानन्दः- उत्तर भारत में रामभक्ति का द्वार सामान्य जन के लिये खोलने वाले रामानन्द के प्रारम्भिक जीवन (जन्म) के संदर्भ में डॉ. नगेन्द्र अपने इतिहास ग्रंथ में लिखते हैं- ''रामानन्द अपने गुरु के सर्वाधिक यशस्वी साधक एवं प्रगतिशील विचारक थे। सन्त-मत के प्रचार एवं प्रसार का श्रेय इन्हीं को है। नाभादास ने 'भक्तमाल' में लिखा है कि इनके अनेक शिष्य-प्रशिष्य थे, जिनमें अनन्तदास, कबीर, पीपा, घन्ना आदि विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं। रामानन्द को दीर्घ, पवित्र एवं साधनात्मक जीवन प्राप्त हुआ था, किन्तु इनके आविर्भाव-काल, निधन-काल तथा जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं होती। 'भक्तमाल' के अनुसार ये रामानुजाचार्य की शिष्य परम्परा में चतुर्थ शिष्य थे। इनका आविर्भाव- काल चैदहवीं शताब्दी का अन्तिम चरण माना जा सकता है, क्योंकि यह प्रसिद्ध है कि ये कबीर और पीपा के गुरु थे और इन दोनों का आविर्भाव-काल क्रमशः 1399 ई. तथा 1425 ई. स्वीकार किया जाता है। रामानन्द के निघन-काल के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं- कुछ विद्वानों का मत है कि इनकी मृत्यु 1463 ई. में हुई थी, और कुछ का मत है कि इन्होंने 1448 ई. में शरीर का विसर्जन किया। उपलब्ध तथ्यों एवं उल्लेखों के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि इनका आविर्भाव-काल लगभग 1368 ई. तथा निधन-काले लगभग 1468 ई. था। 'श्रीभक्तमाल सटीक' के अनुसार इनका जन्म प्रयाग में कान्यकुब्ज ब्राह्मण-कुल में हुआ था।'' उनकी शिष्य परंपरा में रैदास, सननाई जी थे जो की उनकी विचार धाराओं से प्रभावित थे 'पीपाजी' भक्त भी उनके शिष्य थे। इनकी शिष्य परम्परा में कबीरदास जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है।

कबीर दास- संत काव्य के प्रतिनिधि कवि कबीर दास जी समाज सुधार के लिए आज पुरोधा की भांति खड़े रहे। रामानंद के विचारों को विस्तृत फलक पर उतारने का श्रेय कबीर दास को जाता है, निश्चय ही कबीर दास जी जैसे संत विरले ही होते हैं। कबीर दास के जन्म को लेकर समाज में अनेक किंवदंतियां प्रचलित हैं।

कहा जाता है कि विधवा ब्राह्मणी के कोख से जन्म लेने के कारण इन्हें लहर तारा तालाब के किनारे छोड़ दिया गया जहां से ला कर नीरू-नीमा नामक जुलाहे दंपति ने इनका पालन पोषण किया। इनका जन्म 1398 ई. काशी में माना जाता है यह रामानंद के शिष्य परंपरा में माने जाते हैं। इनके

संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं- इनकी उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। कहते हैं, काशी में स्वामी रामानंद का एक भक्त ब्राह्मण था जिसकी किसी विधवा कन्या को स्वामी जी ने पुत्रवती होने का आशीर्वाद भूल से दे दिया।''

कबीर दास के संदर्भ में मान्यता है कि इन्होंने रामानंद से गंगा के किनारे सीढ़ियों पर लेट कर राम नाम की दीक्षा ली थी प्रसंग कुछ इस तरह है कि रामानंद जी प्रातः जल्दी गंगा स्नान करने जाया करते थे वही अंधेरे में कबीरदास सीढ़ियों पर लेट गए और रामानंद स्नान कर जब वापस आ रहे थे तो उनका पैर कबीर के शरीर से लग गया तो उन्होंने कहा है- राम राम, जिसे गुरु दीक्षा मानकर कबीरदास ने अंगीकार किया।

कबीरदास का विवाह 'लोई' के साथ हुआ था। कबीर को कमाल और कमाली नाम की दो संतानें भी थी। गुरु ग्रंथ साहब के उल्लेख से ज्ञात होता है कि कबीर का पुत्र कमाल उनके मत के अनुरूप नहीं था- बूड़ा बंस कबीर का, उपजा पूत कमाल। हरि का सिमरन छोडि के, घर ले आया माल। पुत्री कमाली का उल्लेख उनकी बानियों में कहीं नहीं मिलता है। कहा जाता है कि कबीर के घर में रात-दिन जमघट रहने से बच्चों को रोटी तक मिलना कठिन हो गया था। इस कारण से कबीर की पत्नी झुंझला उठती थी। एक जगह कबीर उसको समझाते हैं:- सुनि अंघली लोई बंपीर। इन मुड़ियन भजि सरन कबीर।।

जबकि कबीर को कबीर पंथ में, बाल-ब्रह्मचारी और विराणी माना जाता है। इस पंथ के अनुसार कामात्य उसका शिष्य था और कमाली तथा लोई उनकी शिष्या। वस्तुतः कबीर की पत्नी और संतान दोनों थे। एक जगह लोई को पुकार कर कबीर कहते हैं:- कहत कबीर सुनहु रे लोई। हरि बिन राखन हार न कोई।। यह हो सकता हो कि पहले लोई पत्नी होगी, बाद में कबीर ने इसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने स्पष्ट कहा है:- नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार। जब जानी तब परिहरि, नारी महा विकार।। कबीर दास की रचनाओं का संग्रह साखी, सबद और रमैनी के रूप कबीर दास की रचनाएं सहित जगत में सम्मान पा रही है।

साखी- दोहा में लिखी गई है तथा कबीर की शिक्षाओं एवं सिद्धान्तों का विवेचन इसमें हुआ है। सबद- कबीरदास के पदो को 'सबद' कहा जाता है। इन पदों में रहस्यवादी भावना एवं अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना इन पदों की विशेषता है। रमैनी- रमैनी की रचना चैपाइयों छंद में हुई है। कबीर के रहस्यवादी और दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति इन रमैनी में विशेष रूप से हुई है। कबीर पढ़े-लिखे नहीं लेकिन आज उन्हें पढ़े लिखे भी समझ नहीं पा रहा है इतना दर्शन उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थापित किया। कबीर की मृत्यु के संदर्भ में डॉ नागेंद्र विचार करते हुए लिखते हैं- संवत पंद्रह सै पछत्तरा, कियो मगहर को गौन। माघ सुदी एकादशी, रलो पौन में पौन।। तात्पर्य यह कि कबीर का निधन 1518 ई. (1575 वि.) में हुआ। इस मन्तव्य का समर्थन 'कबीर-परिचई' के इस उल्लेख से भी हो जाता है कि कबीर को 120 वर्ष का पवित्र जीवन प्राप्त हुआ था, अर्थात् वे 1398-1518 ई. तक विद्यमान थे। कबीर के काव्य में दाम्पत्य एवं वात्सल्य के द्योतक प्रतीकों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। उनकी रचनाओं में सांकेतिक प्रतीक, पारिभाषिक प्रतीक, संख्यामूलक प्रतीक, रूपात्मक प्रतीक तथा प्रतीकात्मक उलटबांसियों के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। कबीर-साहित्य प्रतीक-योजना से भरा पड़ा है। रहस्यवाद से सम्बद्ध पदों में अकथनीय अनुभव को व्यक्त करने के लिए उन्होंने पग-पग पर प्रतीकों का आश्रय लिया है। प्रभाव-साम्य के कारण उनके प्रतीकों से तादृशी भावना जाग्रत होती है। इसमें सन्देह नहीं कि कबीर की दूरदर्शिता, रसज्ञता, सहृदयता तथा संवेदनशीलता ने उनके काव्य में विभाव-पक्ष को सुन्दर और प्रभावशाली बना दिया है। फिर भी, उनमें वह सतर्कता एवं सावधानी नहीं मिलती जो लिखित साहित्य के लिए अपेक्षित है। काव्य-सौन्दर्य की अभिवृद्धि के साधनों- छन्द, अलंकार आदि के प्रति उनके मन में कोई पूर्व-निष्ठा नहीं है। उनके रूपक तथा उपमाएं दैनिक जीवन से सम्बद्ध हैं। सत्य तो यह है कि काव्य-रचना उनका साध्य या लक्ष्य नहीं था, फिर भी अपने महान् सन्देशों की अभिव्यक्ति के लिए उन्हें काव्य को माध्यम बनाना पड़ा। इस प्रकार रहस्यवादी सन्त और धर्मगुरु होने के साथ-साथ वे भावप्रवण कवि भी थे। निश्चय कबीरदास जैसा समाज सुधारक संत समाज को नई दिशा देने के लिए ही प्रकट होता है। नाभादास रचित भक्तमाल में कबीर के संदर्भ में लिखा गया है कि-

भक्ति विमुख जो धरम ताहि अधरम करि गायो। जोग जग्य व्रत दान भजन बिनु तुच्छ दिखायो।

हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी। पच्छपात नहिं बचन सबहिं के हित की भाखी।

आरूढ़ दसा है जगत पर मुख देखी नाहिन भनी। कबीर कानि राखी नहीं, वर्णाश्रम षट् दरसनी।।

रैदास- निर्गुण संतों में रविदास का स्थान भी कम महत्वपूर्ण नहीं है गुरु ग्रंथ साहिब में इनके पदों का संग्रह है। विद्वानों ने इनका जन्म काशी माना है। रविदास के संदर्भ में डॉ नगेंद्र लिखते हैं- रैदास मध्ययुगीन साधकों में रैदास अथवा रविदास का विशिष्ट स्थान है। निम्नवर्ग में समुत्पन्न होकर भी उत्तम जीवन-शैली, उत्कृष्ट साधना-पद्धति तथा उल्लेखनीय आचरण के कारण वे आज भी भारतीय धर्म-साधना के इतिहास में सादर स्मरण किये जाते हैं। रैदास का जन्म काशी में हुआ था-काशी को ही उनका निवास स्थान माना गया है। कबीर की भांति उनके जीवन काल के विषय में भी बड़ा मतभेद है। 'रैदास की परिचई' में जन्म-काल का उल्लेख नहीं है। 'भक्तमाल' और डॉ. भण्डारकर के अनुसार उनका जन्म 1299 ई. में हुआ था। डॉ. भगवतव्रत मिश्र ने यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि कवि का जन्म-काल 1398 ई. तथा मृत्यु-काल 1448 ई. के मध्य होना चाहिए। यह भी प्रसिद्ध है कि वे मीराबाई (1498-1546) के गुरु थे, इस स्थिति में 1530 ई. के पूर्व उनका देहावसान नहीं माना जा सकता।'' संत रैदास के संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं- जाती ओछा पाती ओछा, ओछा जनमु हमारा। रामराज की सेवा कीन्ही, कहि रविदास चमारा।। कबीर की विचारधारा के केन्द्र में हिन्दुओं-मुसलमानों का शोषित-प्रताड़ित वर्ग था तो रैदास के विचार-केन्द्र में चमारों और सवर्ण हिन्दुओं का भेदभाव। इस भेदभाव की तीव्रता का अनुभव करते हुए कभी-कभी उनके धैर्य का बाँध टूट जाता था-

जाके कुटंब सब ढोर ढोवंत फिरहिं अजहूँ बानारसी आसपासा।

आचार सहित बिप्र करहिं डंडउति तिन तनै रविदास दासानुदासा।।

हजारों वर्षों से दबाई हुई शोषित जाति का कंठ इसी आवेग से फूटता है। रैदास को आचारनिष्ठ विप्रों का दंडवत करना भक्ति-आन्दोलन की उस धारा की ओर संकेत करता है जिसके प्रखर प्रवाह में जाति-पाँति के बाँध एक सीमा तक टूट-फूट गये थे। राजस्थान में रैदास का विशेष प्रभाव था। कहा जाता है कि मेवाड़ की झालारानी इनकी शिष्या थीं। मीराबाई ने भी गुरु-रूप में रैदास का उल्लेख किया है। रैदास के बहुत-से पद 'आदिग्रंथ' में संगृहीत हैं।'' संत का परंपरा में रैदास का अवदान अद्वितीय है।

गुरु नानक देव- नानक का जन्म तलवंडी नामक गांव में हुआ यह गांव राइभोई के अंतर्गत आता है जिस की लाहौर से लगभग तीस मील की दूरी है। गुरु नानक ने पंजाब में एक नए संप्रदाय सिख संप्रदाय का परिवर्तन किया। यह संप्रदाय कबीर से प्रभावित माना जाता है या अकेले ऐसे संत थे जिन्होंने मुसलमान नवाबों का मुखर विरोध किया। गुरु नानक के संदर्भ में डॉ नगेंद्र लिखते हैं- ''नानक-पन्थ की स्थापना राजनीतिक परिस्थितियों के कारण हुई, किन्तु उसका स्वरूप धार्मिक तत्त्वों के रंग से अनुरंजित है। नानकदेव समन्वयशील और उदार प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। उनमें अद्भुत संगठन-शक्ति, क्षमाशीलता और दूरदर्शिता विद्यमान थी। उनका आविर्भाव लाहौर के निकटस्थ राइभाई की तलवण्डी ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम कालूचन्द एवं माता का नाम तृप्ता था। उनका जन्म स्थान अब ननकाना साहब नाम से प्रख्यात है। बाल्यावस्था में उन्हें संस्कृत, फारसी, पंजाबी एवं हिन्दी की शिक्षा प्राप्त हुई। वे आरम्भ से ही आत्मचिन्तन, ईश्वर-भक्ति और सन्त-सेवा की ओर उन्मुख रहे। कुछ समय तक उन्होंने गृहस्थी भी चलायी। उनके दो पुत्र हुए, जिनके नाम थे- श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। पिता की भांति श्रीचन्द भी विख्यात साधु हुए और उन्होंने 'उदासी सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया। गुरु नानक भ्रमणशील साधु थे। उन्होंन सभी दिशाओं में यात्राएं की थीं। इस सन्दर्भ में सभी धर्मों और मतों के अनुयायी सन्तों से उनकी भेंट होती रहती थी। फलस्वरूप समाज और धर्म के सम्बन्ध में उनकी विचारधारा अनुभूति तथा समन्वय पर आधारित है। धार्मिक रूढ़िवाद, जाति के संकीर्ण बन्धनों तथा अनाचारों के प्रति उन्होंने सदैव विरोध का स्वर उठाया। उनके काव्य में निर्गुण ब्रह्म के प्रति उच्च कोटि की भक्ति-भावना विद्यमान है, किन्तु इसके साथ ही अन्य धार्मिक विचारधाराओं के लिए भी उनके मन में श्रद्धा थी। सत्य के प्रति आस्था के फलस्वरूप उनकी वाणी में स्पष्टता और उद्बोधन की प्रखरता मिलती है। कबीर की भांति उनके काव्य में भी शान्त रस की निर्बाध धारा प्रवाहित हुई है, यद्यपि कहीं-कहीं करुण, अद्भुत आदि कुछ अन्य रसों के अनुकूल सामग्री भी प्राप्त होती है। नानक के अनुसार ईश्वर-कृपा से तत्त्व-दर्शन तो हो जाता है, किन्तु उस अनुभव की अभिव्यक्ति सदैव नहीं हो पाती। यथाः

आपे जाणे आपे देई, आखहि सि भि केई केइ।

जिसनौ बखसे सिफति सालाह, नानक पातिसाही पातिसाहु ।।''

गुरु नानक देव का स्थान सिख समाज में सर्वोपरि है गुरु नानक देव ने समाज सुधार के लिए कबीर की भांति आंदोलन चलाया।

सींगा- मध्यभारत की बडवानी के खजूर गांव में संत सींगा(1519-1659) का जन्म एक ग्वाल-परिवार में हुआ था। बाचपन से ही वे संसार से विरक्त रहा करते थे। एक बार वे हरसूद से भामगढ़-मार्ग पर जा रहे थे, मार्ग में महाराज ब्रह्मगीर के शिष्य मनरंगीर यह भजन गा रहे थेः

समुझि ले औरे मना भाई, अंत न होय कोई अपणा।

यही माया के फंदे में, तर आन भुलाणा।।

इन पंक्तियों ने संसार की निःसारता को उनके हृदय में प्रत्यक्ष रूप से अंकित कर दिया और उन्होंने मनरंगीर को अपना आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक स्वीकार कर लिया। पिपल्या के जंगलों में उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की साधना की और अनहद नाद सम्बन्धी भजन लिखे। वे उच्च कोटि के विचारक थे। उनके अनुसार परम तत्त्व की खोज में मन्दिर, मस्जिद और तीर्थों में जाने की आवश्यकता नहीं है, उसके दर्शन गंगा, यमुना आदि में स्नान करने से नहीं होतेय वरन् वह तो हृदय में ही विद्यमान है। यथा

जल विच कमल, कमल विच कलियां, जहं वासुदेव अविनाशी।

घर में गंगा, घर में जमुना, नहीं द्वारिका कासी।।

घर बस्तु बाहर क्यों ढूंढ़े, बन बन फिरा उदासी।

कहें जन सिंगा, सुनो भाई साधो, अमरपुर के वासी ।।''

सींगा की निर्गुण ब्रह्म सम्बन्धी धारणा सन्त कबीर की ब्रह्म विषयक कल्पना से बहुत कुछ साम्य रखती है। उनकी उक्तियों में अप्रस्तुत योजना बड़ी यथार्थ और स्वाभाविक है। उनके द्वारा विरचित पदों की संख्या 800 बतायी जाती है, किन्तु वे सभी अभी तक उपलब्ध नहीं हो सके हैं। संत सींग का नाम संत परंपरा में बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

संत धर्मदास- धर्मदास का नाम संत परम्परा को आगे ले जाने वाले संतों में प्रमुख माना जाता है। धर्मदास की वाणी का संत समाज में बड़ा आदर है। उनके संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं- ''ये बाँधवगढ़ के रहनेवाले और जाति के बनिए थे। बाल्यावस्था में ही इनके मैं भक्ति का अंकुर था और ये साधुओं का सत्संग, दर्शन, पूजा, तीर्थाटन आदि किया करते थे। मथुरा से लौटते समय कबीरदास के साथ इनका साक्षात्कार हुआ। उन दिनों संत समाज में कबीर की पूरी प्रसिद्धि हो चुकी थी। कबीर के मुख से मूर्तिपूजा, तीर्थाटन, देवार्चन आदि का खंडन सुनकर इनका झुकाव 'निर्गुण' संतमत की

ओर हुआ। अंत में ये कबीर से सत्य नाम की दीक्षा लेकर उनके प्रधान शिष्यों में हो गये और संवत् 1575 ई. में कबीरदास के परलोकवास पर उनकी गद्दी इन्हीं को मिली। कबीरदास के शिष्य होने पर इन्होंने अपनी सारी संपत्ति, जो बहुत अधिक थी, लुटा दी। ये कबीरदास की गद्दी पर बीस वर्ष के लगभग रहे और अत्यंत वृद्ध होकर इन्होंने शरीर छोड़ा। इनकी शब्दावली का भी संतों में बड़ा आदर है। इनकी रचना थोड़ी होने पर भी कबीर की अपेक्षा अधिक सरल भाव लिए हुए है, उसमें कठोरता और कर्कशता नहीं है। इन्होंने पूरबी भाषा का ही व्यवहार किया है। इनकी अन्योक्तियों के व्यंजक चित्र अधिक मार्मिक हैं क्योंकि इन्होंने खंडन-मंडन से विशेष प्रयोजन न रख प्रेमतत्व को लेकर अपनी वाणी का प्रसार किया है। उदाहरण के लिये कुछ पद नीचे दिए जाते हैं-

झरि लागै महलिया गगन घहराय।

खन गरजै, खन बिजुली चमकै, लहरि उठै सोभा बरनि न जाय।

सुत्र महल से अमृत बरसै, प्रेम अनंद वै साधु नहाय।।

खुली केवरिया, मिटी अंधियरिया, धनि सतगुरु जिन दिया लखाय।

धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय।।''

संत दादू दयाल- दादू पंथ के जन्म दाता संता दादू दयाल की विचारधारा कबीर से मिलती-जुलती है। उनकी वाणी संतों में खूब आदर पाती रही है। दादू दयाल के संदर्भ में डाॅ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित इतिहास में उल्लेख मिलता है- ''दादू-पन्थ के प्रवर्तक सन्त दादूदयाल धर्म-सुधारक, समाज-सुधारक और रहस्यवादी कवि थे। मध्यकालीन साधकों में उनका व्यक्तित्व बड़ा प्रभावशाली है। उनका जन्म अहमदाबाद में हुआ था, किन्तु उनके आविर्भाव-काल के सम्बन्ध में मतभेद है। डॉ. बड़थ्वाल, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार उनका जन्म 1544 ई. में हुआ था, जबकि डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार वे 1601 ई. में आविर्भूत हुए थे। दादू की जाति के सम्बन्ध में भी मतभेद है। सुधाकर द्विवेदी के मत से वे धुनिया थे। क्षितिमोहन सेन ने अपने ग्रन्थ 'दादू' में उल्लेख किया है कि वे एक ब्राह्मण के पालित पुत्र थे, डॉ. बड़थ्वाल ने भी उन्हें गुजराती ब्राह्मण कहा है। इन सब मतों के अनन्तर दादू के शिष्य रज्जब का यह मत भी विचारणीय है: ''धुनि ग्रमे उत्पन्नो, दादू योगेन्द्रा महामुनि।'' स्पष्ट है कि दादू धुनिया-परिवार में समुत्पन्न हुए थे और जाति के मुसलमान थे। दादू के गुरु वृद्ध भगवान् थे, जनगोपाल ने 'जनमलीलापरची' में इस मत का समर्थन किया है। दादू-पन्थ में प्रचलित है कि वे विवाहित थे और गरीबदास तथा मिस्कीनदास नामक उनके दो पुत्र थे। परची के अनुसार दादू का महाप्रस्थान 1603 ई. में हुआ।'' इनकी रचना का कुछ अनुमान नीचे उद्धृत पद्मों से हो सकता है -

घीव दूध में रमि रह्या व्यापक सब ही ठौर। दादू बकता बहुत है, मथि काढ़े ते और।।''

मलूकदास- मलूकदास संत कवियों में विख्यात हैं। इनके जन्म सम्बन्धी विषय पर विचार करते हुए डाॅ. नगेन्द्र लिखते हैं- ''मलूकदास (1574-1682) का आविर्भाव उस समय हुआ जब भारतवर्ष में अकबर के साम्राज्य का दीपक हिन्दुओं के स्निग्ध स्नेह से जगमगा रहा था। उनका महाप्रस्थान औरंगजेब के राज्य-काल में हुआ। उनके पिता का नाम सुन्दरदास खत्री था। संसार से विरक्ति का जो बीज मलूकदास के हृदय में आगे चलकर पल्लवित और पुष्पित हुआ, उसका बीजारोपण उनकी बाल्यावस्था में ही हो चुका था। उनके दीक्षा-गुरु के सम्बन्ध में हिन्दी के इतिहासकारों में बड़ा मतभेद है, कुछ उन्हें कील का शिष्य मानते हैं और कुछ द्राविड़ विट्ठल को उनका गुरु बताते हैं। किन्तु मलूकदास ने 'सुखसागर' में गुरु देवनाथ के पुत्र पुरुषोत्तम का गुरु-रूप में स्मरण किया है। मलूकदास के विवाह, पत्नी और एक कन्या का भी उल्लेख 'परिचई' में हुआ है। वे जीवन-पर्यन्त अपने पैतृक व्यवसाय द्वारा गृहस्थी का परिपालन करते रहे।'' मलूकदास का उल्लेख करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- आलसियों का यह मूल मंत्र -

'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। दास मलूका कहि गए, सबको दाता राम।।

इन्हीं का है। इनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं- रत्नखान और ज्ञानबोध। हिंदुओं और मुसलमानों दोनों को उपदेश देने में प्रवृत्त होने के कारण दूसरे निर्गुणमार्गी संतों के समान इनकी भाषा में भी फारसी और अरबी शब्दों का प्रयोग है। इसी दृष्टि से बोलचाल की खड़ी बोली का पुट इन सब संतों की बानी में एक सा पाया जाता है। इन सब लक्षणों के होते हुए भी इनकी भाषा सुव्यवस्थित और सुन्दर है। कहीं-कहीं अच्छे कवियों का सा पदविन्यास और कवित्त आदि छंद भी पाए जाते हैं। कुछ पद बिलकुल खड़ी बोली में हैं। आत्मबोध, वैराग्य, प्रेम आदि पर इनकी बानी बड़ी मनोहर है।''

इनकी एक रचना का उदाहरण दृष्टव्य है- मलूकदास ने अवधी और ब्रजभाषा में काव्य-रचना की है। 'ज्ञानबोध', 'रतनखान', 'ज्ञानपरोछि' आदि की रचना अवधी भाषा में हुई है तथा कृष्णचरित्र से सम्बद्ध ग्रन्थों की भाषा ब्रजभाषा है। कवि ने संस्कृत, फारसी तथा अन्य बोलियों के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उनकी विचारधारा और शैली के परिचय के लिए निम्नलिखित उद्धरण देखिए:

कहत मलूक जो बिन सिर खेवै, सो यह रूप बखानै।

या नैया के अजब कथा, कोइ बिरला केवट जानै ।।

कहत मलूका निरगुन के गुन, कोइ बड़भागी गावै।

क्या गिरही औ क्या बैरागी, जेहि हरि देयं सो पावै ।।''

इस काव्यधारा में अन्य कवियों के भी नाम बहुश्रुत हैं यथा- संत जम्भनाथ, हरिदास निरंजनी, जगजीवन साहब (सत्यनामी सम्प्रदाय), लालदास, संत रज्जब, संत पीपा, सेन, धन्ना, बाबरी साहिबा एवं सदना आदि।

संत काव्यधारा के कवियों ने साहित्य में तो अवदान दिया है ही साथ ही समाज को गति प्रदान की। गति के संदर्भ में छुआ-छूत आडम्बर जैसे बड़े सामाजिक सरोकारों को अपनी रचना के माध्यम से उद्वेलित किया। जीव हत्या जैसे विषय पर स्पष्ट रूप से कह पाये कि 'जे बकरी पाती खात है, तिनकी काढ़ी खाल। जे नर बकरी खात है तिनके कौन हवाल।।' इतना ही नहीं मन को धिक्कारते हुए वे धर्म के मठाधीशों को चेतावनी देते हुए कहते हैं यदि मन वश में नहीं है तो जप माला और छापा तिलक ये सब आडम्बर है। मन का वश में होना और प्रत्येक जीव हित हृदय मंे होना यही सच्चे संत की पहचान है। संत काव्य परम्परा समाज सुधार की सबसे सशक्त परम्परा है। यह समाज को छोड़कर जंगलों अथवा पर्णकुटियों में निवास करने वाले नहीं वरन् समाज में रहकर समाज के लिए अपने जीवन को लगा देने वाले हैं। न जाने आज भी समाज में उन संत कवियों की कितनी वाणियों से समाज की कितनी विसंगितयों को दूर करने का यत्न किया गया। उसके परिणाम भी आज हमारे सामने उपस्थित हैं। निश्चय ही यह संत काव्य परम्परा साहित्य के लिए अस्तुत्य है वहीं समाज के लिए वंदनीय भी। प्रस्तुत शोध पत्र इसी परम्परा का संक्षिप्त अनुशीलन है।

CONFLICT OF INTERESTS

None.

ACKNOWLEDGMENTS

None.

REFERENCES

Singh, Dr. Bachchan, Second History of Hindi Literature, p. 83.
Dr. Nagendra, History of Hindi Literature, p. 121
Dr. Nagendra, History of Hindi Literature, p. 125
Shukla, Acharya Ramchandra, History of Hindi Literature, p. 48
Dr. Nagendra, History of Hindi Literature, p. 129
Shukla, Acharya Ramchandra, History of Hindi Literature, p. 93
Dr. Nagendra, History of Hindi Literature, p. 131
Same, p. 133
Dr. Nagendra, History of Hindi Literature, p. 134
Shukla, Acharya Ramchandra, History of Hindi Literature, p. 56
Dr. Nagendra, History of Hindi Literature, p. 136
Shukla, Acharya Ramchandra, History of Hindi Literature, p. 59